Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-2, Jul - Dec 2023

भारतीय दर्शन में लोक चिन्तन

डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर
सहायक आचार्य वि.स.यो. राज.सरकार
राजकीय विठ्ठलनाथ सदाशिव पाठक
आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, कोटा

सामाजिक विज्ञान के रूप में दर्शनशास्त्र सहज ज्ञान की समीक्षा के आधार पर समाज को प्रवृत्ति के माध्यम से अनुशासित करता है। शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार विचार करें तो देखना अर्थ में प्रयुक्त दृश् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। शास्त्र शब्द की निष्पत्ति दो धातुओं से होती है – शास् = आज्ञा करना तथा शस् = प्रकट या वर्णन करना। विधि या निषेध के रूप में उपदेश देने वाला शास्त्र स्मृति रूप है इसलिए उपदेश अर्थ में शास्त्र शब्द का प्रयोग वेद और धर्मशास्त्र के लिए किया जाता है। शस् (धातु) बोधक शास्त्र दर्शन के लिए प्रयुक्त होता है। दर्शन का मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कारण यह है कि मानव जीवन का कोई भी पक्ष इस क्षेत्र से अछूता नहीं है।[1] सृष्टि के आरम्भ में जब मानवीय चिन्तन परम्परा का विकसित स्वरूप अनुभव जनित मूर्त आकार लेने लगा तो कालान्तर में ही यह दर्शन के रूप में परिवर्तित हो गया, जिसका आविर्भाव अनेक सहस्त्राब्दि पूर्व वैदिक काल में ही हो चुका था।

भारतीय दर्शन का महत्व जीवन में अभूतपूर्व है। प्राणी ने इस विश्व की पहेली को समझने का जो प्रयत्न अपनी कुशाग्र बुद्धि से किया है। यह विचार शास्त्र के इतिहास में गौरव की वस्तु है। इन अनेक रूपात्मक क्षण–क्षण में विलक्षण रूप धारण करने वाले पदार्थों के अन्तस्तल में विद्यमान रहने वाली एकरूपता को खोज निकालना दर्शनशास्त्र की अपूर्व देन है। दर्शनशास्त्र की दार्शनिक जिज्ञासा में मानवीय चिन्तन ने ज्ञात किया कि यह जगत् परिवर्तनशील है और जिससे सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन हो रहा है। इस प्रश्न का औचित्यपूर्ण उत्तर ऋग्वेद के पुरूष सूक्त की इस ऋचा में मिलता है। यथा –

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्त्वस्येशानों यदन्नेनातिरोहति।।[2]

इससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्माण्ड की नियामक सत्ता ब्रह्म है, पिण्डाण्ड सत्ता आत्मा है। ब्रह्म तथा आत्मा दोनों कोई भिन्न–भिन्न तत्व नहीं है अपितु एक ही है। प्रत्येक प्राणी उस अन्तर्यामी आत्मा को अपने में अनुभव करता है, वही नियामक सत्ता पर ब्रह्म है। भारतीय दर्शन के आधार ग्रन्थ वेद और उपनिषद् है। इन ग्रन्थों में वर्णित विचारों का समर्थन करने वाले आस्तिक दर्शन तथा विरोध करने वाले नास्तिक दर्शन रहे है। महर्षि मनु का यह कथन वेद निन्दको नास्तिकः[3] इस विभाजन का मूलाधार है। आस्तिक मत के अन्तर्गत न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा तथा वेदान्त, नास्तिक मत में चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शन आते है।

लोक शब्द का अभिप्राय – लोक जीवन की पहचान, लोक मानस, लोक हृदय या लोक चित्त है। लोक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के लोक दर्शने धातु से घञ् प्रत्यय के योग में देखना अर्थ से निष्पन्न होती है। अतः लोक शब्द का अर्थ होता है – देखने वाला अर्थात् वह समस्त जन समुदाय जो दृष्टि निक्षेप कार्य को सम्पन्न करता है लोक कहलाता है।[4] चेतना शब्द संस्कृत की चित् धातु से ल्युट् व टाप् प्रत्यय के संयोग से बनता है। चेतना शब्द मानव मस्तिष्क का वह गुण धर्म है जिसके द्वारा हमें अपने आस पास की घटनाओं का बोध होता है और हम विश्व को जान पाते है।[5] चेतना मानव मे उपस्थित वह तत्त्व है जिसके कारण उसे उसी प्रकार की मानव देखता सुनता समझता और अनेक विषयों पर चिन्तन करता है। इस प्रकार लोक चेतना का आशय है जप सामान्य के प्रति पूर्ण जागरुकता का भाव बोधअथवा जन साधारण

Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-2, Jul - Dec 2023

के प्रति चिन्तनमूलक मनोवृत्ति। वस्तुतः किसी साहित्यकार के सन्दर्भ में लोक चेतना से तात्पर्य उसकी उस सर्जनात्मक दृष्टि से है जो जनसाधारण के जीवन में व्याप्त सुखद दुःखद परिस्थितियों का सजीव एवं यथार्थ चित्रण निर्भिकता के साथ प्रस्तुत करते हुए जन सामान्य के प्रति जीवन दर्शन प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होती है। लोक चेतना के विविध आयामों में सामाजिक – सांस्कृतिक – धार्मिक – दार्शनिक विषयों का समावेश है क्योंकि समाज धर्म एवं दर्शन ही लोक चिन्तन का पर्याय है।

भारतीय दर्शन जीव और जगत् का नियन्त्रण किसी न किसी नियम के अधीन मानता है। चार्वाक और कुछ उसके अनुयायी यान्त्रिक गतिविधि से जीवन और जगत् की व्याख्या करते है। आज मानव का जीवन नागरिक हो गया है और समाज मृत, सड़ा हुआ, दुर्गन्ध देता शरीर हो गया है क्योंकि प्रसरित अनीति के कारण हम अपने चित्त की अनेक अनैतिकताओं को पहचानने में समर्थ नहीं हो पा रहे है। सत्ता, शक्ति, पद, प्रतिष्ठा की दौड़ में लोग पागल बने हैं। ये आज के मानवीय चित्त की बडी संघातक स्थितियाँ है, क्योंकि जहाँ शान्ति न हो, नीति न हो, शिष्टाचार और संस्कार न हो वहाँ जीवन भी क्या होगा ? आनन्दातिरिक्त, अर्थशून्य, अराजकता को जीवन कैसे कहें ? जीवन नहीं वैदेशिक संस्कृति के रहनुमा – बस एक दुःस्वप्न ही तो कहा जा सकता है – एक मूर्च्छा, एक बेहोशी और पीड़ाओ की एक लम्बी कतार। निश्चय ही यह अनैतिक जीवन 'जीवन' नहीं है। संस्कृति नहीं, अपसंस्कृति की एक लम्बी बिमारी है, जिसकी परिणति या परिसमाप्ति मृत्यु में हो जाती है। ऐसे लोग जी भी नहीं पाते और मर जाते है। एक दूसरे के प्रति प्रेम सहिष्णुता और सहयोग ही नीति है और एक दूसरे के प्रति घृणा, कुत्सा और असहयोग ही अनीति है। आज की अनैतिकता और अराजकता का मूल कारण, व्यक्ति का स्वार्थपरायणता, आत्मपरता और अन्धविश्वास है। आज नीति नहीं, नीति का आभास टूट गया है। यद्यपि कुछ हद तक यह शुभ है कि आज का मनुष्य एक भ्रम से बाहर हो गया है, लेकिन साथ ही एक बडा दायित्व भी उस पर आ गया है और वह है – सम्यक् नैतिक जीवन के लिए नया आधार खोजने का। वह आधार भी सदा से मौजूद है। न्याय–वैशेषिक में इसे अदृश्य शक्ति कहते है। जो एक दूसरे के प्रति समर्पित जीवन व्यतीत करना चाहते है, वही जीवन बेशर्त नैतिक जीवन है।[6]

महर्षि गौतम प्रणीत न्यायदर्शन प्रमाण मीमांसा के साथ मानवीय आचार मीमांसा का भी निर्देश देता है, दुःखों से आत्यान्तिक मुक्ति ही न्याय का उद्देश्य है। महर्षि गौतम का यह सूत्र – दुःख–जन्म–प्रवृत्ति–दोषमिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापायेतदन्तरापायादपवर्गः।[7] अर्थात् ज्ञान का उदय होने पर दुःख का नाश होता है तथा दुःखों से अत्यन्त विमोक्ष को अपवर्ग कहते है – तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः।[8] न्याय दर्शन का व्यावहारिक महत्व शास्त्रीय महत्व सदृश ही है। यह शास्त्र सत्य की खोज की ओर ले जाता है, सत्य की खोज के उपाय बताता है, सत्य की खोज का निश्चय करता है। यह सत्य यद्यपि व्यावहारिक न्यायात्मक अथवा शास्त्रीय साहित्य से युक्त है। उस सत्य की खोज की विधि है – प्रमाणविधि। प्रत्यक्ष आदि प्रमाण सत्य के निश्चय की परीक्षा की कसौटी है। न्याय दर्शनकार ने स्वयं लिखा है– प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः।[9]

वैशेषिकदर्शन न्याय का ही समान तन्त्र है। इसके प्रणेता कणाद मुनि है। इन्होंने वैशेषिक दर्शन के रूप में दिव्य चक्षु की भूमिका का निर्वहन किया है, जिसके अन्तर्गत मनीषियों ने प्रकृति के गूढ रहस्यों का उद्घाटन करते हुए पुरुषार्थ चतुष्टय के क्रमबद्ध सोपान तय करने की व्यवस्था की है। यह दर्शन विभिन्न पदार्थों के विकास एवं अन्तर्वलय के धर्म अथवा प्रकृति की विवेचना करता है। जिसमें यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः। धर्मविशेषप्रसूतात्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानांपदार्था–
नांसाधर्म्यवैधर्म्याभ्यांतत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्[10] प्रथम सूत्र से सृष्टि के सृजन में मानवीय हितकारक धर्म की स्थिति का कालिक दृष्टिकोण निरूपित किया है एवं धर्म को परिभाषित करते हुए पदार्थ की वास्तविक प्रकृति के समाधान का साधन संज्ञापित किया है। वैशैषिक शास्त्र आत्मिक एवं शारीरिक रूप से मानवीय कल्याण करता है।

न्याय और वैशेषिक दोनों ही दर्शन सुख और दुःख को अविभाज्य दृष्टि से देखते है। इनकी दृष्टि में सुख भी दुःख स्वरूप ही है। मानव जीवन को ही ये दुःखात्मक मानते है। इनका कहना है कि दुःख से मुक्ति के लिए सांसारिक सुख का त्याग भी उतना ही आवश्यक है। न्याय–वैशेषिक के अनुसार जीवन का नैतिक आदर्श अपवर्ग ही माना जाता है। आज की अनैतिकता और अराजकता का मूल कारण भी नैतिक जीवन का अभाव ही है। आध्यात्मिकता, नैतिकता और सदाचारिता व्यक्ति को परिनिष्ठित व्यक्ति बना देती है।

वैशेषिक दर्शन में यह स्पष्ट कहा है कि मानव जीवन का उद्देश्य अभ्युदय एवं निःश्रेयस् को प्राप्त करना है, जिन कर्मों को करने से लौकिक वैभव और आत्मिक कल्याण प्राप्त होता है, वही धर्म अर्थात् जीवन का कर्तव्य है– यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः। इसलिए कहा है कि वेद में अभ्युदय एवं निःश्रेयस् की प्राप्ति का वर्णन प्राप्त होता है। सांसारिक सम्पदा कर्मकाण्ड सम्बन्धी अनुष्ठान् अर्थात् पवित्रता की देन है। तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। निःश्रेयस् कि प्राप्ति तत्त्वज्ञान से होती है प्रशस्तपादभाष्य में स्पष्ट करते हुए कहा है कि ज्ञानी पुरूषों का सुख, जो एक प्रकार से पदार्थ की स्मृति, इच्छा, चिन्तन जैसे सब प्रकार के माध्यमों से स्वतन्त्र है और ज्ञान मन की शान्ति, सन्तोष और सद्गुणों के परिपालन से होता है। कर्त्तव्य कर्मों की दिनचर्या धर्मशास्त्रों के द्वारा निश्चित की जाती है। ऐसे कर्तव्य कर्म जो सार्वभौमिक रूप से मान्य होने चाहिए उसको स्पष्ट करते हुए न्यायकदली में स्पष्ट है श्रृद्धा, अहिंसा, भूतहित की भावना, सत्य भाषण, अस्तेय अर्थात् ईमानदारी, बह्मचर्य, मन की शुद्धता, क्रोध, त्याग, स्नान द्वारा शरीर शुद्धि, शुद्धिकरण द्रव्यों का प्रयोग, विशिष्ट देवता की भक्ति, उपवास और कर्तव्यपालन में आलस्य न करना अर्थात् अप्रमाद। इसके अतिरिक्त चारों आश्रमों के विशेष कर्त्तव्यों का परिपालन करने का आदेश है।

भारतीय दर्शन परम्परा में सांख्यदर्शन अत्यन्त प्राचीन एवं प्रभावशाली माना जाता है। इसके प्रवर्तक कपिल मुनि है। सांख्यदर्शन के सिद्धान्तों के संकेत वेद–उपनिषद्–रामायण – महाभारत आदि ग्रन्थों में मिलते है। सांख्य द्वैतवादीदर्शन है, क्योंकि यह दो तत्त्वों प्रकृति एवं पुरुष को मौलिक मानता है।

सर्वप्रथम सांख्यसूत्र में वर्णित है – अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।[11] आचार्य कपिल ने सांख्यशास्त्र का शुभारम्भ दैहिक–दैविक एवं भौतिक त्रिविध तापों की पूर्णरूपेण निवृत्ति रूप पुरुषार्थ का विवेचन करते हुए किया है। मनुष्य जन्म का प्रमुख लक्ष्य दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति है। इसी को सर्वोच्च पुरूषार्थ माना गया है। ज्ञानान्मुक्तिः अर्थात् चेतन–अचेतन भेद साक्षात्कार से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। जब व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार के द्वारा चेतन–अचेतन के भेद को जान लेता है, तब उस अवस्था को ज्ञान प्राप्ति अर्थात् मोक्ष का प्राप्त होना कहा जाता है। इस जगत् में प्राकृत कारणों द्वारा चारों ओर से आवृत्त आत्मा, सांसारिक सुख–दुःख आदि भोगों में यथावत् आसक्त बना रहता है किन्तु जब कभी पूर्व संचित संस्कारों, गुरु कृपा अथवा अन्य किन्ही कारणों से उसके आध्यात्मिक भावों का जागरण होता है। स्वकर्मस्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रम में रहता हुआ व्यक्ति योग का अभ्यास कर सकता है। दैवादिप्रभेदा अर्थात् यह सृष्टि देव आदि के प्रभेदों वाली है। आचार्य कपिल ने तत्त्वसमास सूत्र (18) के अन्तर्गत इसके भेदों का प्रतिपादन इस प्रकार किया है, दैव के आठ भेद – ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, यक्ष, राक्षस एवं पैशाच है। तिर्यक् के पाँच प्रकार – पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप तथा स्थावर है। ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सम्पूर्ण पृथ्वी का मानव एक ही प्रकार का सर्ग है।

आचार्य ने जीवन्मुक्तश्च सूत्र से स्पष्ट किया है कि – आत्मज्ञान सम्पन्न तथा मुक्त पुरुष लोक कल्याण के कार्य में संलग्न रहते है। वे प्राणिमात्र का उपकार करना ही अपना जीवन लक्ष्य मानते है। इतरथाऽन्धपरम्परा सूत्र से आचार्य का मत है कि – आत्मज्ञान सम्पन्न ऋषि मनीषियों के उपदेश और उनके शास्त्र ही समाज को सुव्यवस्थित रखने में समर्थ है। आत्मज्ञान सम्पन्न व्यक्तियों के अभाव में अज्ञानी जनों के द्वारा उपदेश किये जाने से संसार में अन्ध परम्परा मूढ–मान्यताएं, मनगढन्त धर्म प्रारम्भ हो जायेगा तथा मोक्षमार्ग की व्यवस्था समाप्त हो जायेगी। इसी प्रकार निम्न सांख्यसूत्रों में सामाजिक व्यवस्था का प्रतिमूर्तस्वरूप परिलक्षित होता है –

(1) श्येनवत् सुखदुःखी त्याग वियोगाभ्याम्।
(2) निराशः सुखी पिङ्गलावत्।
(3) अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत्।
(4) मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फदर्शनात् श्रुतितश्चेति।[12]

शालीनपुरुषों, महापुरुषों, ऋषियों, सन्तपुरुषों सभी के आचरण से यह प्रेरणा मिलती है कि शुभकर्म करना ही श्रेयस्कर है।

महर्षि पतंजलि प्रणीत योगदर्शन अत्यन्त वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक दर्शन है। इसका प्रतिपाद्य विषय स्वस्थ शरीर और सबल आत्मतत्त्व है। आत्मा के यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति ही योग दर्शन का मूल उद्देश्य है। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए लिखा है–योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। अथयोगानुशासनम्[13] से अभिप्रेत है कि योग का व्यावहारिक स्वरूप जन सामान्य के कल्याणार्थ प्रस्तुत है। गीता में अनेक प्रकार से योग को परिभाषित किया है। यथा– सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते तथा योगः कर्मसु कौशलम्।[14] योग सांख्य का ही क्रिया रूप है– गीता में भी उल्लेख है – एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।[15] योग समस्त सम्प्रदायों और मत–मतान्तरों के पक्षपात एवं वाद–विवाद से रहित सार्वभौम धर्म है, जो स्वयं अनुभव के द्वारा तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना सिखलाता है और मनुष्य को उसके अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाता है। योग मानव जीवन को सार्थक और सफल बनाने का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। योग दर्शन के सिद्धान्तों का ज्ञान जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित है। अष्टांग योग का निर्देश मानव–मानव में प्रेमभाव, भाईचारा बढाकर विश्वबन्धुत्व का भाव विकसित करता है। योग साधनों का उपयोग देश, काल, जाति की सीमा से परे व सभी के लिए कल्याणकारी है – जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाःसार्वभौमा महाव्रतम्। योगदर्शन स्वस्थ समाज की स्थापना करता है यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्टावंगनि (साधनपाद सूत्र–29)
चित्त की प्रसन्नता हेतु मैत्रीकरूणामुदितोपे क्षाणांसुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणांभावनातश्चित्त – प्रसादनम्।[15] सूत्र वर्णित है, इसी प्रकार –

(1) अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः।
(2) सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।
(3) अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।
(4) ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।
(5) सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः। उपर्युक्त अंश मानवीय कल्याण के लिए एक संन्देश है।[16]

धर्म, कर्म एवं सदाचार के त्रिकोणात्मक चिन्तन में मीमांसा दर्शन अद्वितीय एवं निरुपम है। मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक है– आचार्य जैमिनी। मीमांसा शब्द का अर्थ– गहन विचार, परीक्षण एवं अनुसंधान है।[17] मीमांसासूत्र में वर्णित है कि मनुष्य को स्वर्ग प्राप्ति के लिए यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ स्वस्थ पर्यावरण हेतु भी आवश्यक है। यह दर्शन मानव को सदैव धर्म–कर्म में प्रवृत्त करने की पृष्ठभूमि तैयार करता रहा है। महर्षि ने सामाजिक धर्म के विश्लेषण को अपना लक्ष्य बनाया है – अथातो धर्म–जिज्ञासा। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। विद्या प्रशंसा।[18] मीमांसक वेद को अपौरूषेय तथा नित्य मानते है। इनका ज्ञान विषयक विचार बहुत ही सूक्ष्म एवं गंभीर है। यह दर्शन समाज को अध्यात्म की ओर प्रवृत करता हआ, सामाजिक जीवन में यज्ञ के महत्व पर पुरजोर बल देता है।

भारतदेश की प्राणभूत आध्यात्मिक चिन्तन परम्परा में प्रदीप्त मुकुटमणि की तरह अद्वैत वेदान्त की मान्यता सार्वजनीन है। उपनिषदों की अध्यात्मविद्यापरक विचारधारा का संगठित रूप वेदान्त दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परमात्मा का परम गुह्य ज्ञान वेदान्त के रूप में सर्वप्रथम उपनिषदों में ही प्रकट हुआ है –

वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः, संन्यासयोगाद् यतयः शुद्ध सत्वा।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले, परामृताः परिमुच्यति सर्वे।।[19]

महर्षि बादरायण वेदान्त दर्शन के प्रणेता है, इनके द्वारा प्रतिपादित सूत्र वेदान्तसूत्र है। इसे ब्रह्मसूत्र, शारीरकमीमांसा या उत्तरमीमांसा भी कहा जाता है। वेदान्त दर्शन की आचार मीमांसा में वर्णित है कि– विश्व की समस्त जीवात्माओं के बीच मानवीय जीवात्मा ही नैतिक नियमों के अधीन है। नैतिकता मानवीय जीवन की एक अवस्था है। जिसमें समर्पण, त्याग एवं सहयोग और सहानुभूति फलित होती है। नीति कोई कर्म नहीं अपितु यह स्वभाव, सत्य तथा दिव्य जीवन का आधार है। शंकराचार्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आस्था व्यक्त की है। ब्रह्मज्ञान ही मुक्ति का साधन है, क्योंकि इस ज्ञान के बिना मुक्ति असम्भव है – ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। वेदान्त प्रत्येक जीव को निरन्तर कर्मशील होने का उपदेश देता है। वेदान्त की शिक्षा का चरम अवसान है – वसुधैवकुटुम्बकम्।

नास्तिक दर्शन की विचारधारा में चार्वाक दर्शन नास्तिक शिरोमणि दर्शन है, जिसके प्रणेता बृहस्पति है। चार्वाक आचार्य की शिक्षा है –

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा धृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।[20]

चार्वाकियों की मानव समाज के लिए यह विशेष देन है कि ऋण लेकर सुखपूर्वक जीवन यापन करों। कर्ज लेना एवं अदा करना मानव की सामाजिक परिस्थितियों हेतु अनिवार्य सा है किन्तु यह जीवन को सुखी बनाने के लिए लूट–हत्या–चोरी आदि का निर्देश नहीं देता है। चार्वाक लोग स्वस्थ तथा सुखमय जीवन के पक्षपाती है, वे नहीं चाहते कि यह सुन्दर जीवन आध्यात्मिक सुख पाने की मृग मरीचिका में व्यर्थ बिताया जाये। जीवन के ईहलौकिक पक्ष के ये प्रबल समर्थक है।

चार्वाक दर्शन ने समाज की सुदृढता हेतु दण्डनीति और वार्ता दो विद्याओं का मण्डन किया है। वर्तमान परिवेश में दण्डनीति 'राजनीति' का पर्याय है, जिसके गर्भ में कृषि, वाणिज्य, व्यापार आदि का समावेश हो जाता है। वहीं वार्ता अर्थशास्त्र का प्रारूप है, जो प्राणियों के जीवन निर्वाह अर्थवृद्धि, व्यापार, वाणिज्य आदि के लिए नितान्त उपयोगी है। कृषि तथा वाणिज्य भारतीय समाज के लिए कल्याणकारी है।

चार्वाक दर्शन ने लौकिक मार्ग के अनुसरण का सन्देश दिया है। जिसका उद्देश्य बहुजन हिताय व बहुजन सुखाय है। यह लोगों का उपकारक, कल्याण इत्यादि करने वाला है। चार्वाक दर्शन अर्थ एवं काम को जीवन का लक्ष्य स्वीकार करता है। अर्थ की उपयोगिता इसलिए है कि यह सुख अथवा काम की प्राप्ति में सहयोग प्रदान करता है। धन एक साधन है, जिससे सुख साध्य की प्राप्ति होती है। धन मूल्य अपने आप में नहीं है, बल्कि इसका मूल्य सुख का साधन होने का कारण ही है। जीव हत्या को अनुचित बताता हुआ चार्वाक कहता है कि –

पशुश्चेन्निहत स्वर्गज्योतिष्ठोमे गमिष्यति।
स्वपितायजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।।[21]

हिंसा की प्रवृत्ति एवं मांसाहार के प्रति आकर्षक मनुष्य में निरन्तर बढ रहा है, आज भारतीय संस्कृति की प्राणभूत गौ माता का वध हो रहा है जो मानव के लिए चिन्ता का विषय है। गाय विधाता की सर्वाधिक उपयोगी प्राणी है जो सदैव परोपकार की प्रतिमूर्ति रही है। मानव पूर्णतया अहिंसक एवं शाकाहारी प्राणी है। अहिंसा न केवल आत्मिक या आध्यात्मिक धर्म है अपितु लोक व्यवहार का सामाजिक धर्म भी है। चार्वाक एक क्रान्तिकारी विचारधारा भी है, जिसने प्राचीन युग में प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई और मानव को उनके अन्धविश्वासों से मुक्त करने में सफलता प्रदान की तथा सन्देश दिया कि लौकिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। जिसमें लोगों का कल्याण हो।

जैनदर्शन की विशाल ज्ञानराशि में अध्यात्म, धर्म, तत्त्वदर्शन, जीवनशैली, आचारशास्त्र, अतीद्रियज्ञान, पुनर्जन्मवाद, भावनात्मक स्वास्थ्य, योगविद्या, प्रेक्षाध्यान, विश्वविज्ञान, परमाणु विज्ञान आदि विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में विवेचन उपलब्ध है। जैन धर्मियों का मत है कि – जीवों की हिंसा नहीं करना चाहिए। मानव जीवन में जो दुःख है, उसके लिए न तो ईश्वर को दोषी ठहराया जा सकता है और न ही हिंसा का प्रेरक। यदि कोई अपने आपको जानने में समर्थ हो जाय तो साथ ही साथ सबके भीतर जिस

जीवात्मा का वास है उसे जानने में भी उसे कठिनाई नहीं होगी और इस बोध के कारण एक दूसरे जीव के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और प्रेम के लिए किसी को दुःख देना सम्भव नहीं है। किसी को दुःख देने की यह असम्भावना ही जैनियों की अहिंसा है। भगवान् महावीर का यह संदेश स्वस्थ समाज की स्थापना करता है।

जैन दर्शन आधुनिक विज्ञान के साथ सहमति रखता हुआ प्रकृति के साथ रचनात्मक समन्वय की बात करता है। हर स्तर पर हमें प्रकृति का संरक्षण और विकास करना होगा, तभी मानवीय कल्याण संभव है। इस दर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह पंच महाव्रत है। सर्वतो भावेन अहिंसाव्रत का पालन करना जैन दर्शन की देन है – अहिंसा परमोधर्मः।[22]

मन वचन और कर्म से सर्वथा मिथ्या आचरण का परित्याग कर यथादृष्ट, यथाश्रुत किसी वस्तु के स्वरूप का कथन ही सत्य कहलाता है। भगवान महावीर ने सत्य को श्रेष्ठ माना है– तं सच्चं खु भगवं। आज अस्तेय की सर्वाधिक प्रासंगिता है क्योंकि उग्रवाद जैसी विश्वसमस्या का निदान इसी में निहित हैं।

जैनदर्शन में अस्तेय मन, वचन और कर्म से चोरी के त्याग को कहा है। वर्तमान समय में चोरी, लूट, हत्या जैसी घटनाएं निरन्तर हो रही है, जो सभ्य समाज की स्थापना में घातक है अतः अस्तेय सिद्धान्त वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोगी है। ब्रह्मचर्य भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है – मनुष्य के द्वारा ब्रह्म की खोज में अपना जीवन क्रम रखना। जैन दर्शनिक उमा स्वामि ने गुरूकुल वास को ब्रह्मचर्य कहा है। यही पर ब्रह्मचर्य के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए स्वामी ने कहा है कि – व्रतपालन, ज्ञानवृद्धि और कषायों पर विजय प्राप्त करना ब्रह्मचर्य का मूल उद्देश्य है। विषयासक्ति का त्याग आवश्यक है क्योंकि अधिक के संग्रह को आत्मा क्षरित होती है, इसे जैन दर्शन में अपरिग्रह कहा जाता है। अतः समन्वयात्मक दृष्टि जैन दर्शन की सहिष्णु–उदारता और विशिष्ट दर्शन की विशालता का परिचायक है।

जैन दर्शन में वर्णित सामाजिक शिक्षाओं में आचारः प्रथमो धर्मः अर्थात् आचार पर विशेष आग्रह प्रथम है, जिससे समाज को नैतिक शिक्षा सम्पन्न किया जा सकता है। संसार में दुःख की सत्ता इतनी बलवती है तथा प्रत्येक पद पर हमें आक्रान्त कर रही है इससे मुक्ति के लिए उद्योग करना प्रत्येक विवेकशील प्राणी का कर्तव्य हो जाता है। जैनधर्म के अनुसार इसका केवलमात्र उपाय है– रत्नत्रय का सम्पादन– सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चरित्र। भगवान् महावीर की शिक्षाएं स्वानुभूति की आधारशीला पर प्रतिष्ठित है। उन्होंने त्याग की परिभाषा –

जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ ति वुच्चइ।।[23]

वैदिक ऋषि भी कहते है –

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।[24]

वर्तमान में समाज भुंजीथा परायण हो गया है, अतः इस शिक्षा की आज महत् आवश्यकता है। जिससे सभ्य समाज की स्थापना कर सकें तथा त्याग–तपस्या–तपोवन जैसे स्थलों की आभा सिद्ध हो।

भगवान् बुद्ध प्रणीत बौद्ध दर्शन लोक हिताय –लोक सुखाय समाज की स्थापना करता है। बुद्धं शरणं गच्छामि, सङ्घं शरणं गच्छामि वचन आज भी भारतीय जनसमाज में प्रासंगिक है। बुद्ध के जीवन का एकमात्र उद्देश्य है– सांसारिक मनुष्यों को दुःख से मुक्ति।[25] महात्मा बुद्ध ने आत्मा–परमात्मा, लोक–परलोक, जीव–अजीव या ब्रह्म जैसे दार्शनिक चिन्तनों में न उलझकर जनकल्याण हेतु चार आर्यसत्यों का उपदेश दिया ये है–

दुःखसमुदयनिरोधामार्गाश्चत्वारःआर्यबुद्धस्वाभिमतानितत्वानि।[26] बौद्धदर्शन का पंचशीलसिद्धान्त (अहिंसा, अस्तेय, सत्य, ब्रह्मचर्य तथा मद्य का निषेध) आज भी महत्व युक्त है। बुद्ध की शिक्षा का सारांश प्रज्ञा–शील और समाधि से व्यक्त किया गया है। जीवन में सफलता और विजय प्राप्त कर द्वेष और द्रोह उत्पन्न होता

है तो असफलता और पराजय में दुःख और अनुताप होता है, इन दोनों स्थितियों में जो समभाव में रहता है उसका जीवन प्रवाह आनन्द से भर जाता है। भगवान् बुद्ध की यही मानसिक पवित्रता है।

भगवान् बुद्ध ने तृष्णा को दुःख का कारण माना है। उन्होंने इस तृष्णा के त्याग को धर्म कहा है इसके विपरीत सन्तोष को सबसे बडा धन कहा है, किन्तु दीनता में सन्तोष अप्रयुक्त है। लोभ के वशीभूत होकर तृष्णा के त्याग की भी उन्होंने सराहना नहीं की है। प्रत्येक प्राणी को संग्रह करने की असंयत भावना पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

कर्म को मानव जीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना धर्म है। धर्म विश्वास नहीं विवेक पर आधारित हो, ज्ञान उसके प्राण है, धर्म चेतना का विज्ञान है। बुद्ध समस्त विश्व को धर्मराज्य बनाना चाहते थे। वे प्राणियों के दुःख समूह को मिटाने के लिए दूसरों के साथ न्यायसंगत तथा धर्मसंगत व्यवहार करने पर वे अधिक बल देते थे। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने (1) जीवहत्या न करने का, (2) किसी की कोई वस्तु न चुराने का। (3) झुठ न बोलने का (4)व्यभिचार न करने का (5) नशीली वस्तु के सेवन न करने का पाठ पढाया है। आज भारत के अधिकांश युवा नशे की चपेट में है, उनके लिए भगवान् बुद्ध का यह उपदेश सुग्राह्य है।

निष्कर्षतः भारतीय दर्शन में सर्वतः व्यक्ति के साथ समष्टि का भी कल्याण समान रूप से सोचा गया है– सब कर हित सुरसरि सम होई। हमारे दार्शनिकों ने व्यक्ति हित के साथ समाज हित का भी समानरूप से ही चिन्तन किया है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

स्नेह, पारस्परिकता और सौहार्द के अभाव में व्यक्ति निपट निजात में रह जाता है। उसका न कोई परिवार होता है और न समाज। वह केवल 'स्व' रह जाता है और 'पर' से उसका कोई सेतु नहीं बन पाता। यही व्यक्ति की क्रमिक मृत्यु है क्योंकि जीवन तो पारस्परिकता में है, जीवन तो सम्बन्धों में है सामाजिकता और पारस्परिकता में अपने और पराये का अतिक्रमण हो जाता है, जहाँ न कोई अपना रह जाता है और न पराया। पारस्परिकता से परिवार बनता है और इसी पारस्परिकता के विकास से परिवार बड़ा होता है, फिर जब उस परिवार से बाहर कुछ नहीं रह जाता है, तब भारतीय दर्शन के हृदय से उद्गार होता है– वसुधैव कुटुम्बकम्। भारतीय दर्शन लोक कल्याण के लिए आत्म कल्याण को विस्मृत कर देता है। इनके अनुसार समाज सेवा में ही व्यक्ति सेवा भी सन्निहित है। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कहा हे – बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

अतः भारतीय दर्शन संश्लेषणात्मक है। यह जीवन दर्शन है। मानव जीवन का सच्चा पथ प्रदर्शन है व्यावहारिक जीवन का निदर्शन है। मानवीय मूल्यों का इसमें सुव्यवस्थित जीवन का प्रतिपादन है। मानव जीवन की व्याख्या इसका मूल उद्देश्य है।

सन्दर्भ

1. वैशेषिक दर्शन के प्रमुख प्रामाणिक ग्रन्थों के सन्दर्भ में प्रमाण मंजरी का तुलनात्मक अध्ययन, भूमिका पृ. – 1 ।
2. पुरुष सूक्त 10/90/2 ऋक सूक्त संग्रह पृ 393।
3. मनुस्मृति 2/11।
4. कथा साहित्य में लोक चेतना पृ. – 21।
5. हिन्दी नवगीतों में लोक चेतना पृ. – 87।
6. भारतीय दर्शन, जगदीशचन्द्र मिश्र पृ. 418–420।
7. न्यायसूत्र 1/1/2।
8. न्यायसूत्र 1/1/22।
9. न्यायभाष्य तथा न्यायवार्तिक 1/1/1।
10. वैशेषिक सत्र – 1/1/4,2,3।

11. सांख्यकारिका का. 1।
12. सांख्यसूत्र 4/5/300, पृ. 108। सांख्यसूत्र 4/11/306, पृ. 111।
सांख्यसूत्र 4/12/307, पृ.111। सांख्यसूत्र 5/1/328, पृ.119।
13. योगसुत्र 2/1।
14. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/48।
15. योगसुत्र समाधिपाद सूत्र – 32।
16. योगसुत्र साधनपाद–30, साधनपाद –36, साधनपाद –37,साधनपाद –38, साधनपाद – 43।
17. भारतीय दर्शन, जगदीशचन्द्र मिश्र पृ. 487।
18. मीमांसा सूत्र 1/1/1–4।
19 वेदान्त दर्शन भुमिका पृ. – 3
20 चार्वाक दर्शन, सर्वदर्शनसंग्रह –1।
21. चार्वाक दर्शन, सर्वदर्शनसंग्रह –7।
22 भारतीय दर्शन, जगदीशचन्द्र मिश्र पृ. 214।
23 भारतीय दर्शन, जगदीशचन्द्र मिश्र पृ. 236।
24 ईशावास्योपनिषद् मन्त्र –1।
25 भारतीय दर्शन, जगदीशचन्द्र मिश्र पृ. 255।
26 बौद्धदर्शन पृ. 318।